मानवता के शहीद

जनाब मिर्ज़ा आबिद हुसैन साहब मरहूम
अनुवादकः जनाब अमानत अली साहब

प्रत्येक वर्ष मुहर्रम की दस तारीख़ को जब मुहर्रम के किसी जुलूस पर दृष्टि पड़ती है तो भावुक हृदय यह जानने के लिए उत्सुक हो जाता है कि वह कौन सी मार्मिक घटना घटित हुई जिसे शताब्दियों की धूल की पर्तें अपने भीतर न छुपा सकीं।

अब से चौदह सौ साल पहले अरब की भूमि पर ईश्वर के अंतिम दूत हज़रत मुहम्मद साहब ने फारान की चोटी से पथ भ्रष्ट लोगों को आवाज़ दी ''और उन्हें सत्य के मार्ग पर चलने के लिए आमंत्रित किया''। यह वह समय था जब अरब वासी 'व्यक्तित्व-उपासना' में लीन थे। उनके ईश्वर सैकड़ों देवी देवताओं का रूप धारण कर चुके थे। काबे में रखी हुई तीन सौ साठ मूर्तियाँ अरब वासियों के विचारों को प्रतिबन्धित कर रही थीं। ऐसे समय में मुहम्मद साहब ने उन्हें सैकड़ों देवताओं के बजाए एक ईश्वर (अल्लाह) के सामने सर झुकाने पर बल दिया, वह ईश्वर जिसने सारे ब्रहमाण्ड की रचना की। मुहम्मद साहब के बताए हुए इस तथ्य (सत्य) का अनुकरण करना अरब-वासियों के विरूद्ध तथा अपमानजनक था। यदि मुहम्मद साहब ने उनके पूजनीय देवी देवताओं की संख्या में एक की वृद्धि कर दी होती तो सम्भवतः अरब वासी उसे अधिक प्रसन्नता से स्वीकार कर लेते, अपने प्रचलित ख़ुदाओं की निंदा किया जाना उन्हें अच्छा न लगा।

मुहम्मद साहब को अरब वासियों के दृष्टिकोण को परिवर्तित करने के लिए कठिन परिस्थितियों से गुज़रना पड़ा। उसके पश्चात जनसाधारण ने मुहम्मद साहब का संदेश स्वीकार किया। अरब भूमि पर इस्लाम के मानने वालों की संख्या बढ़ने लगी और धीरे-धीरे उनके सरदारों ने भी इस्लाम का संदेश स्वीकार किया, परन्तु उनमें से कुछ व्यक्ति जिन्होंने समय और परिस्थितियों से विवश होकर इस्लाम धर्म स्वीकार किया था, उनके हृदय में इस्लाम के प्रति कोई श्रद्धा भाव न होने के कारण वे इस्लाम के सच्चे अनुयायी न बन सके।

मुहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् परिस्थितियाँ उनके परिवार के प्रतिकूल हो गयीं अतः उनके दामाद हज़रत अली[अ०] को रमज़ान के पवित्र महीने में रोज़े (व्रत) की दशा में विष से बुझी तलवार से शहीद कर दिया गया, इसके पश्चात् मुहम्मद साहब के बड़े नवासे इमाम हसन[अ०] को धोके से विष देकर शहीद किया गया और उन्हें मुहम्मद साहब की क़ब्र के पास दफ़न भी नहीं करने दिया गया बल्कि उनके शव पर बाड़ों से प्रहार किया गया। यह घटना इस्लाम के मौलिक सिद्धान्तों पर खुला हुआ विद्रोहात्मक प्रहार थी। इस विद्रोह का अन्त करबला में हुआ जब मुहम्मद साहब के छोटे नवासे इमाम हुसैन[अ०] और उनके बहत्तर साथियों को तीन दिन का भूखा प्यासा क़त्ल कर दिया गया।

इमामे हुसैन[अ०] का इस प्रकार निर्दयतामय क़त्ल क्रूरता और मज़लूमियत (अत्याचारितता) की एक ऐसी अद्वितीय घटना थी जिसका उदाहरण विश्व के किसी इतिहास में न मिल सकेगा।

यद्यपि अपने समय की सबसे बड़ी हुकूमत ने एक छोटी सी बहत्तर आदमियों की भूखी प्यासी सेना को

जिसमें अस्सी वर्ष के बूढ़े से लेकर छः माह का बच्चा भी था, अपनी असीम शक्ति का क्रूरता पूर्वक प्रयोग करके क़त्ल तो कर दिया पर उनकी राजनीतिक चालें तथा अत्याचार का सागर उस सेना के एक छोटे से बालक को भी असत्य के सामने झुका न सका। निश्चय ही करबला की लड़ाई मानवता पर एहसान करने वाले मुहम्मद साहब के नवासे इमामे हुसैन[अ०] की अमर कथा से सम्बद्ध है। उस समय हुकूमत एक ऐसे व्यक्ति के हाथों में पहुँच चुकी थी जिसने इस्लाम के सिद्धान्तों की सीमाओं को तोड़कर उन विचारों को पुनर्जीवित कर दिया था जो मुहम्मद साहब के संदेश सुनाने के पूर्व अरब वासियों के हृदय में व्याप्त थे। व्यक्तित्व उपासना फिर उभर कर सामने आ रही थी जिसको मुहम्मद साहब ने मिटाने का प्रयत्न किया था और ऐसा प्रतिष्ठित जीवन सिद्धान्त दिया था जिसने ऊँच-नीच की श्रेणियों को समाप्त कर दिया था। आत्मा पर नियंत्रण रखना जीवन की कसौटी थी, सरल जीवन बिताना भाईचारे की भावना इस्लाम के मौलिक सिद्धान्त थे परन्तु यज़ीद तक हुकूमत पहुँचते-पहुँचते इस्लामी सिद्धान्त की आत्मा निर्जीव सी हो चुकी थी उसके मूल्य धुंधले पड़ चुके थे और पदासीन व्यक्तियों ने एक बार 'क़ैसर' (रूम के सम्राट की उपाधि), 'किस्रा' (ईरान के सम्राट की उपाधि) के स्रोतों को सर उठाने का अवसर दिया था और एक ही ईश्वर का बनाया हुआ मनुष्य ऊँच-नीच की श्रेणियों में विभक्त हो गया था, इस्लामी सिद्धान्तों और नियमों का अनादर हो रहा था और मुसलमानों में इतनी हिम्मत नहीं रह गई थी कि तत्कालीन शासक के ग़ैर इस्लामी कार्यों के विरूद्ध कोई आवाज़ उठा सकते। यद्यपि मुसलमानों की एक बड़ी संख्या ने भय या लालच में आकर यज़ीद को ख़लीफ़ा स्वीकार कर लिया था लेकिन यज़ीद यह जानता था कि जब तक हुसैन और उनके परिवार के लोग उसको मान्यता प्रदान न करेंगे वह इस्लामी शासन का उत्तराधिकारी नहीं बन सकता। इस कारण इमामे हुसैन[अ०] पर यह दबाव डाला गया कि वह यज़ीद को विधिपूर्ण शासक स्वीकार करें। इमाम हुसैन[अ०] के लिए यह सम्भव न था कि वह ऐसे व्यक्ति को जो इस्लाम के मौलिक सिद्धान्तों का हनन कर रहा था उसे इस्लाम का संरक्षक मान लेते। इमाम हुसैन के लिए यह कार्य अत्यन्त सरल था कि वह यज़ीद के विरूद्ध जनमत को भड़काते और गद्दी पर अधिकार जमा लेते, ऐसा करना उस समय की प्रचलित प्रथाओं के विरूद्ध भी न होता परन्तु इमामे हुसैन[अ०] तिरस्कृत होते हुए इस्लाम को बचाने के लिए प्रचलित हिंसात्मक तरीक़ों को न अपना कर अहिंसा और बलिदान के रास्ते को अपनाना चाहते थे।

कुछ लोग अवश्य ही इमाम हुसैन[अ०] की शहादत को एक साधारण सी घटना समझते होंगे परन्तु तथ्य यह है कि यह कोई साधारण घटना न थी यदि यह एक आकस्मिक घटना होती तो यह शहादत मदीने के तत्कालीन शासक वलीद के दरबार में ही हो गई होती जबकि इमाम हुसैन[अ०] को अकेले ही वलीद ने अपने दरबार में बुलाया था या फिर मक्के में हज के अवसर पर यज़ीद द्वारा भेजे गए गुप्तचरों द्वारा इमाम हुसैन[अ०] को क़त्ल कर दिया गया होता परन्तु इमाम हुसैन[अ०] ने अपनी दूरदर्शिता और बुद्धिमता से ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी गयीं थी कि यज़ीद अपने कुकर्मों पर पर्दा न डाल सके।

करबला की लड़ाई दो शासकों की पारस्परिक लड़ाई भी नहीं कही जा सकती जैसा कुछ इस्लाम से अनभिज्ञ लोगों का विचार है। इमाम हुसैन[अ०] के अधीन न तो कोई राज्य था और न ही उन्होंने किसी सैन्य शक्ति जुटाने का कभी प्रयास किया था, बल्कि जो लोग स्वंय ही आपके साथ इस लड़ाई में जाने के लिए तैयार हुए उन्हें भी आप ने यह कहकर विदा कर दिया कि मैं तो मरने के लिए जा रहा हूँ यहाँ तक कि शहादत की रात को जो उनके जीवन की आख़िरी रात थी, इमाम हुसैन[अ०] ने अपने साथियों को इकट्ठा करके कहा कि "तुम सब मुझको छोड़कर चले जाओ" और यह कहकर चराग़ बुझा दिया ताकि जाने वालों को लज्जा न आए। इस प्रकार वह अपने साथियों की संख्या बढ़ाने के बजाए कम करते रहे यहाँ तक कि केवल बहत्तर व्यक्ति ही साथ रह गए जो दस मुहर्रम को उनके साथ शहीद हुए।

सन् इक्सठ हिजरी में इमामे हुसैन[अ०] अपने साथियों सहित शहीद हो गए। अरब की तपती भूमि पर तीन दिन तक उनको पानी की एक बूँद भी पीने को न दी गई। उनके बच्चों को नैज़ों के वाणों से छलनी किया गया, और क्रूरता से क़त्ल किया गया, उनके ख़ैमों में आग लगा दी गई, औरतों के सरों पर से चादरें उतारी गईं, मुहम्मद साहब[स०] की नवासियों और उनके परिवार के सदस्यों को बन्दी बनाकर अपमान हेतु शाम और कूफ़े के बाज़ारों में फिराया गया। चाहे उस समय लोग चमकती तलवारों के बीच इस अत्याचार पर गहरी नज़र न डाल सके परन्तु शीघ्र ही उन्होंने यह अनुभव किया कि ऐसे मनुष्यों को जो मुहम्मद साहब[स०] के नवासे पर पानी बंद कर दें, नन्हें-नन्हें बच्चों को क़त्ल कर दें, औरतों को बेपर्दा कर दें और उन्हें अपमानित करें क्या उसे एक मुसलमान या एक सभ्य मानव कहा जा सकता है?

यज़ीद की औपचारिक सफ़लता उसकी वास्तविक असफलता थी जिसकी पहली घोषणा यज़ीद द्वारा उस समय की गई जब इमाम हुसैन[अ०] के परिवार के सदस्यों को बंदी बनाया गया और शाम और कूफ़ा के वासियों को जब इस बात का पता चला कि हम को धोके में रखकर यज़ीद ने मुहम्मद के नवासे को क़त्ल करवा दिया जो मुहम्मद साहब[स०] के वास्तविक उत्तराधिकारी थे, तो उन्होंने यज़ीद को इस कुकर्म के लिए के लिए धिक्कारा। यज़ीद ने स्वयं आत्म ग्लानि की और हुसैन के बड़े बेटे इमामे ज़ैनुलआबिदीन[अ०] को बुलाकर कहा कि आपको मैं क़ैद से रिहा करता हूँ और आपका जहाँ जी चाहे वहाँ चले जाएं। यज़ीद का अपने अत्याचार को महसूस करना ही इमाम हुसैन[अ०] की जीत का प्रारम्भ था।

यज़ीद का पुत्र 'मुआविया' अपने पिता के अत्याचार और बर्बरता से इतना अधिक विरूद्ध हो गया कि उसने अपने पिता के बाद राजगद्दी को ठोकर मार दी और कहा कि मैं उस राज्य का शासन अपने हाथों में नहीं लेना चाहता जिसकी नीव हिंसा और अत्याचार पर रखी गयी हो। यदि इमाम हुसैन अपना बलिदान न करते तो यज़ीद की मृत्यु के बाद भी यज़ीदियत (अत्याचार) समाप्त न होती और एक के बाद एक नया यज़ीद पैदा होता रहता। इमाम हुसैन[अ०] ने अपने इस अमूल्य बलिदान के लिए एक अनोखा मार्ग अपनाया कि स्वयं शाहीद हो गए, अपनी गोद के पाले बच्चे को अपने सामने क़त्ल होते देखा, अपने सगे सम्बन्धियों और साथियों का बलिदान दिया, स्त्रियों की रुसवाई स्वीकार की परन्तु इस्लाम को मिटने से बचा लिया और मानवीय मूल्यों की रक्षा इस प्रकार से की कि अब कोई यज़ीद उसको ध्वस्त नहीं कर सकता।

मुहर्रम में निकलने वाले मातमी जुलूसों और मजलिसें इस सत्यता को दर्शाती हैं कि हम उस शहीद को अपनी श्रद्धांजली अर्पित कर रहे हैं जिसने सत्य के लिए बलिदान दिया, मानवता की रक्षा की और इस्लाम की नींव को सुदृढ़ बनाया। हिन्दुस्तान में इमाम हुसैन[अ०] की अमर बलिदान की यादगार हर वर्ष विशेष रूप से मनायी जाती है क्योकि इमाम हुसैन[अ०] को हिन्दुस्तान से विशेष लगाव था। एक कथा यह भी है कि करबला के मैदान में जब हुसैन और यज़ीद के बीच संधि की बात हो रही थी तो इमाम हुसैन[अ०] ने कहा था कि यदि तुम लोगों को मेरे अरब में रहने से कोई भय हो तो तुम मुझे हिन्दुस्तान चला जाने दो। इमाम हुसैन[अ०] के इन विचारों का आदर करते हुए हिन्दुस्तान के अधिक्तर व्यक्ति बिना जाति और धर्म के भेदभाव के उनकी यादगार हर वर्ष मनाते हैं यहाँ तक कि ब्राह्मणों में तो एक ऐसा वर्ग है जो हुसैनी ब्राह्मण कहलाता है। कहा जाता है कि सिकंदर पंजाब को जीतने के बाद हिन्दुस्तान से एक ब्राह्मण परिवार अपने साथ ले गया था जो ज्योतिष विद्या में दक्षता रखता था, यह परिवार इराक़ में बस गया था। इमामे हुसैन[अ०] के क़त्ल हो जाने के बाद यज़ीदी फ़ौज इसी मार्ग से गुज़री जहाँ ब्राह्मण परिवार ने अपना पूजा-स्थल बनाया था। रात में उस ब्राह्मण ने एक कटे हुए सर से प्रकाश निकलते हुए देखा तो चकित हुआ। यह सर उसी पूजा स्थान में रखा हुआ था। जब उस ब्राहम्ण ने उस सर के बारे में पता लगाया तो मालूम हुआ कि यह कटा हुआ सर मुहम्मद साहब[स०] के नवासे इमामे हुसैन[अ०] का है। ब्राह्मण परिवार के युवा बालकों ने

शेष... पेज 9 पर

उठाया, डेरों, ख़ेमों में आग लगा दी। रसूल के सम्मान पूर्ण घराने की पवित्र महिलाओं के सिर से उनकी चादरें उतार ली गईं। शहीदों के लाशे घोड़ों की टापों से रौंद डाले गए।

इमाम हुसैन के मरने के पश्चात मर्दो में केवल हुसैन के एक रोगी पुत्र जिनका नाम हज़रत सज्जाद था बाक़ी बचे थे। जिनको तौक़ और जंजीर पहनाकर बन्दी बनाया गया स्त्रियों तथा बच्चों को भी क़ैद किया गया और फिर इन सबको नगरों-नगरों फिराया गया करबला से कूफ़ा और कूफ़ा से सीरिया एक क़ैदी के रूप में यह रसूले ख़ुदा के घर वाले अपराधियों द्वारा ले जाए गए। इब्ने ज़ियाद तथा यज़ीद के दरबारों में खड़े किये गए इन सब बातों का संक्षिप्त वर्णन बाद वाली पुस्तिका में जिसमें हज़रत सैय्यदे सज्जाद की जीवन कथा है मिलेगा।

इन नाम मात्र मुसलमानों ने पैग़म्बरे ख़ुदा के नाती हुसैन को कफ़न भी न दिया आसपास बनी असद गोत्र के लोग बसे हुए थे उन्होंने शहादत के तीसरे दिन अर्थात 12 मुहर्रम को इन अपराधियों के चले जाने के पश्चात हुसैन को दफ़्न किया।

आज करबला में हुसैन का रौज़ा बड़े वैभव के साथ समस्त संसार की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है और हुसैन के नाम का ताज़िया अलम और दूसरे प्रदर्शन आज भी संसार के हर स्थान पर मिलते हैं। हुसैन संसार में अमर हैं और उनके कारण इस्लाम बाक़ी है, सत्यता, तथार्थता, ईश्वर पूजा, स्वतंत्रता के लिए इमाम हुसैन की शहादत का उदाहरण मानवता के इतिहास में अनुपम रूप से सदा शेष रहेगा।

यदि करबला की घटना से संसार कुछ सीख ले और जो कार्य हुसैन ने करबला में किया उसका अनुकरण करने की चेष्टा करें तो जीवन के लक्षण पूरे राष्ट्र में प्रकट होने लगें।

हम में यही त्रुटि है कि हम महान उद्देश्यों के सामने अपने क्षणिक लाभ अपने आराम अपने जीवन अपनी रिश्तेदारियों तथा संतान एवं न जाने कितनी रूपहली, सुनहरी वस्तुओं का पक्ष करते हैं।

इमाम हुसैन ने यह उदाहरण उपस्थित किया कि तुम ऊँचे उद्देश्यों के लिए अपना सब कुछ बलिदान करने को तैयार रहो। धन्य है वह व्यक्ति जो हुसैन के बलिदान से पाठ लेकर अपने को प्रयोगात्मक ढंग से पेश करे जैसा हुसैन संसार को बनाना चाहते थे। □□□

शेष... मानवता के शहीद

उस सर को यज़ीदी फ़ौज को देने से मना कर दिया तो फ़ौज के सिपाहियों ने उन युवा बालकों को क़त्ल कर डाला। फ़ौज के चले जाने के पश्चात बूढ़े ब्राहम्ण ने अपने बालकों के सर और धड़ जोड़कर इमाम की बारगाह में विनती की कि मेरे बच्चे आपके ही प्रेम में मारे डाले गए आप ही उन्हें दोबारा जीवन दीजिए। कहा जाता है कि बालक जीवित हो गए मगर उनकी गर्दनों पर निशान बने रहे और उस परिवार की पीढ़ी दर पीढ़ी पर यह निशान उनकी सन्तानों की गर्दन पर पाए जाते हैं इन्हीं लोगों को हुसैनी ब्राहमण कहा जाता है।

वास्तविक्ता यह है कि हिन्दुस्तान में इमाम हुसैन और उनके साथियों की यादगार जिस प्रकार मनाई जाती है दूसरे किसी देश में इस प्रकार से शायद ही मनाई जाती हो। इस तथ्य से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दुस्तानियों को इमाम हुसैन[अ०] के प्रति विशेष श्रद्धा है। हर वर्ष मुहर्रम में हम सभी हिन्दुस्तानी बिना धर्म और जाति के भेदभाव के उस महान शहीद को श्रद्धांजलि आर्पित करते हुए अपने सर उसकी बारगाह में झुकाते हैं जिसने मानवीय मूल्यों को जीवित रखने के लिए अपना सर कटा दिया।

(इमामिया मिशन प्रकाशन न० 199 मार्च 1971)